मनुष्य जीवन में भी अनेक चीजे मिलती है। बिछडती है टूटती है तब व्यक्ति को निराश नही होना चाहिए। जो बीत गई सो बात गयी कहकर फिर से आगे बढना चाहिए। कवि पूरे विश्व की पीडा को कुछ इस तरह प्रस्तुत करते है।

कोई मस्जिद ना होती, कोई मन्दिर न होता।
कोई दलित ना होता, कोई काफिर न होता।
कोई बेबस ना होता, कोई बेघर ना होता।
किसी के दर्द से कोई बेखबर ना होता।

इस काव्य में कवि ने पूरे समाज व्यवस्था की पीडा को प्रस्तुत किया है। कोई दलित न होता। कोई काफिर न होता। कोई अनाज के लिए बेबस न होता। कोई बेघर नही होता। किसी के दर्द से हम बेखबर न होते।
बच्चन के अनमोल विचार यहा प्रस्तुत करना बेहद आवश्यक लगता है। जैसे:-

कभी फूलो की तरह मत जीना
जीस दिन खिलोगे बिखर जाओंगे
जिना है तो पत्थर बनकर जिओ
किसी दिन तराशे गए तो
खुदा बन जाओगे।

निष्कर्ष:-हरिवंशराय बच्चनजी की कविताएँ मन का उत्साह बढाती है। हमे धर्म मजहब के फेर में न पडते हुये इन्सान बने रहने की सिख मिलती है। जैसे: -

तू भी इन्सान होता
मैं भी इन्सान होता
काश कोई धर्म न होता
काश कोई मजहब ना होता

आज भी हमारे देश में धर्म मजहब के नाम पर हम आपस में लढते रहते है। सबसे पहले हम, इन्सान बने तो आपसी मतभेद नही रहेंगे। और विदेशीयों को आक्रमण करने का कोई भी अवसर नही मिलेगा। इतिहास गवाह है इस बात का। हमारी आपसी मतभेद के कारण ही विदेशी हम पर अधिकार जताने लिगे यदि हम धर्म मजहब से परे जाकर इन्सान बने तो आज भारत का मानचित्र कुछ और होता। यह अनमोल संदेश बहुत ही प्रेरणादायी है।समाज को सही दिशा देनेवाली उसे जागरूक करनेवाली और खासकर युवाओं को असफलता से हार मान सफलता के लिए सदैव प्रयत्नशील रहने व विपरीत परिस्थिति में भी पूरे मनोयोग से संघर्ष करनेवाली ये कविता हमारे लिए नई आशा का निर्माण है।

****

संदर्भ ग्रंथ:-

1.समृध्द काव्य - डॉ. संजय गडुपायले
2.आर्वाचिन हिन्दी काव्य - डॉ नरसिंह प्रसाद दूबे
3.स्वतंत्र वार्ता-
4.आधुनिक हिन्दी साहत्य- डॉ. अमर प्रसाद जायस्वाल

महादेवी वर्मा की गद्य रचना एवं स्त्री

प्रियंका सिंह
शोध छात्रा
हिन्दी विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी-221005 मो.नं. 9795901499

महादेवी वर्मा हिन्दी साहित्य की सर्वाधिक प्रतिभावान कवयित्री एवं लेखिका रही है। छायावादी युग की प्रमुख स्त्री विमर्श की रचनाकार हैं। इन्होंने पद्य एवं गद्य दोनों विधाओं में अपने विचार प्रकट किये है। यहाँ उनकी स्त्री विमर्श पर आधारित गद्य रचनाओं पर बात करेंगे जिनमें प्रमुख हैं- ''श्रृंखला की कड़ियाँ'' ''स्मृति की रेखायें'' ''अतीत के चलचित्र''। महादेवी अन्याय को सहन करने वाली महिलाओं में नहीं थी। लेकिन ध्वंस के लिए ध्वंस के सिद्धान्त में उनका विश्वास नहीं था। बदले की भावना से स्त्री-मुक्ति सम्भव नहीं है। वह तो सृजन के उन प्रकाश तत्वों के प्रति निष्ठावान है जिनकी उपस्थिति में विकृति अंधकार के समान विलीन हो जाती है।

महादेवी वर्मा के स्त्री-विमर्श पर कलम चलने के पश्चात् हिन्दी साहित्य में स्त्री-विमर्श एक आन्दोलन का रूप ले लिया। महादेवी वर्मा भारतीय स्त्रियों में दम भरते हुये कहती हैं- ''जिस दिन भारतीय नारी अपने सम्पूर्ण प्राण प्रवेग से जाग सके उस दिन उसकी गति रोकना किसी के लिए सम्भव नहीं। उनका विश्वास है कि स्त्रियों के अधिकार भिक्षावृत्ति से न मिले हैं न मिलेंगेए क्योंकि उनकी स्थिति आदान-प्रदान योग्य वस्तुओं से भिन्न हैं। किसी भी समाज में व्यक्ति का सहयोग और विकास की दिशा में उसका उपयोग ही उसके अधिकार निश्चित करता है।''[1]

महादेवी वर्मा के रचनाओं में जहां एक ओर रहस्यवादी चेतना दिखाई देता है वहीं दूसरी तरफ आक्रोश और संघर्ष के भी दर्शन होते हैं। स्त्री को अपना महत्व स्थापित करना ही होगा। इसके लिए स्त्री को कितना भी संघर्ष करना पड़े। इस संसार में वही व्यक्ति सम्मान व अपना स्थान प्राप्त कर सकता है जिसके हृदय और मस्तिष्क ने सम्पूर्ण विकास पाया है। अपने व्यक्तित्व द्वारा मनुष्य समाज से रागात्मक से अतिरिक्त बौद्धिक सम्बन्ध भी स्थापित कर सकने में समर्थ हो। इसके अभाव में व्यक्ति अपने संकल्प व इच्छाशक्ति को अपना नहीं समझ सकता और न्याय-अन्याय का अन्तर स्पष्ट नहीं कर सकता। समाज में गतिशीलता विकास तथा सामंजस्य के लिए स्त्री हो या पुरूष दोनों की लिए आवश्यकता है। अगर हम विकास के दो महत्त्वपूर्ण अंगों में से एक को नजर अन्दाज करते हैं तो यह हमारे सम्पूर्ण समाज के लिए घातक सिद्ध होगा।

सामाजिक अधिकारों के लिए भी यही सत्य है। जो बन्धन पुरुषों की स्वेच्छाचारिता के लिए इतने शिथिल होते हैं कि उन्हें बन्धन का अनुभव ही नहीं होता वे ही बन्धन स्त्रियों को परावलम्बिनी दासता में इस प्रकार कस देते हैं कि उनकी सारी जीवनी शक्ति शुष्क और जीवन नीरस हो जाती है। समस्त सामाजिक नियम मनुष्य की नैतिक उन्नति तथा उसके सर्वतोन्मुखी विकास के लिए आविष्कृत किये गये हैं। जब वे ही मनुष्य के विकास में बाधा डालने लगते हैं तब उनकी उपयोगिता ही नहीं रह जाती।''[2]

अर्थात् समाज के वे नियमए बन्धन जो एक पुरुष के लिए बिल्कुल उनके इच्छानुसार हो जाता है वे उस बन्धन में जकड़े से नहीं होते हैं जैसे एक स्त्री बंधी होती है। उन्हें बन्धनों का अनुभव ही नहीं होता और न ही इस पर कोई खास मुद्दा बनता है। लेकिन ये ही सामाजिक बन्धन एक स्त्री को इस प्रकार कस देता है कि वे अपने उत्साह व जीवतंता को

खत्मकर एक नीरसता का जीवन व्यतीत करती है। ऐसे सामाजिक बन्धनों को खत्म करना होगा नहीं तो हमारे समाज का एक पक्षीय विकास समाज को पंगु बनाकर छोड़ेगा। जिसमें मनुष्यता कभी विकसित हो ही नहीं सकती ऐसे बन्धनों को खत्म करना ही श्रेयस्कर हैं। हाँ लेकिन ऐसा करने के लिए स्त्री को पुरुषों का अन्धानुकर की आवश्यकता नहीं है बल्कि अपनी आवश्यकता समझनी हैं। हम अपने को कुछ ऐसे कार्य जो पुरुष कर सकता है लेकिन स्त्री नहीं कर सकती तो अपने को पुरुष से तुच्छ नहीं समझना चाहिए क्योंकि हमारे भी कुछ अद्वितीय कार्य को पुरुष करने में असमर्थ जरूर होता हैं। दोनों की अपनी कुछ समान कार्य है तो दोनों की अपनी कुछ विशेष निर्माण कार्य। यही भावना स्त्री को त्यागकर अपने को समर्थ सिद्ध करना है न कि पुरुषों से तुलना। श्रृंखला की कड़ियाँ में ऐसा ही कुछ महादेवी वर्मा कहती हैं-अपने कर्तव्य की गुरुता भली-भाँति हृदयंगम कर यदि हम अपना लक्ष्य स्थिर कर सकें तो हमारी लोह-श्रृंखलाएं हमारी गरिमा से गलकर मोम बन सकती हैए इसमें सन्देह नहीं।''3 स्त्री को अपने व्यक्तित्व निर्माण के लिए कोमलता और सहानुभूति के साथ साहस और विवेक का ऐसा सामंजस्य स्थापित करना पड़ेगा जिससे वह किसी अन्याय को प्रश्रय न दे सकें क्योंकि इस समाज में एक भी ऐसा सामाजिक प्राणी न मिलेगा जिसका जीवन माताए पत्नीए भगिनीए पुत्री आदि स्त्री के किसी न किसा रूप से प्रभावित न हुआ हो।

किसी भी स्त्री को अपने प्रतिकूल बन्धनों को काटने के लिए किसी की अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं है और न ही उसके पास इतना समय ही है कि वह अपनी समस्या को संसार भर में प्रकट करती फिरे। परन्तु इस बन्धन को काटते समय उसे इतना ज्ञान जरूर हो कि इन बन्धनों को काटने के चक्कर में अपने को उसमे उलझा न ले कि एक से छुटकारा मिलते ही किसी दसरे बन्धन में बन्धना अनिवार्य हो उठे। ऐसी परिस्थिति में उसकी मुक्ति की आकांक्षा तथा अपने को समाज में पूर्णता स्थापित करने की आशा दुराशा मात्र न रह जाये। जैसे महादेवी वर्मा ने "अतीतके चलचित्र में 'लक्ष्मा' जो कि उनके सम्पूर्ण जीवन यात्रा में जितने भी व्यक्ति सम्पर्क में आये उनको उन्होंने अपने रेखाचित्र में दिखाया है जिसमें से लक्ष्मा भी एक प्रमुख पत्र है। लक्ष्मा अपने परिवार से निष्कासित कर दी जाती है परिवार में इतनी प्रताड़ित हुई की लोग समझे मर गई होगी लेकिन ऐसा नहीं हुआ उसने अपने अदम्य साहस के साथ पुर्नजीवन पाया लेकिन हमारे समाज में जहाँ एक बार स्त्री के मृत्यु की घोषणा हो जाय अगर वह मौत के मुँह से बाहर निकल आये तो प्रायः उसे दैवी शक्ति या डायन ही समझा जाता है और ऐसे में अगर वह अपने दोषी से बदला लेने के बारे में सोचे तो उसका क्या हस्र होगा महादेवी वर्मा का एक उद्धरण देखिए

श्एक पुरूष के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुरूष समाज उस स्त्री से प्रतिशोध लेने को उतारू हो जाता है और एक स्त्री के साथ क्रूरतम अन्याय का प्रमाण पाकर भी सब स्त्रिया उसके अकारण दण्ड को अधिक भारी बनायें बिना नही रहती। इस तरह पग-पग पर पुरूष से सहायता की याचना न करने वाली स्त्री की स्थिति कुछ विचित्र सी है - वह जितनी ही पहुँच के बाहर होती है पुरूष उतना ही झुँझलाता है और प्रायः यह झुंझलाहट मिथ्या अभि-योगों के रूप में परिवर्तित हो जाती है। यह स्वाभाविक भी है।"[3]

स्त्री का अकेले साहस दिखाना भी पुरूषों को तकलीफ देता हैं। हमारे भारतीय समाज में और भी ज्यादा तकलीफ देह होता है। महादेवी वर्मा अपने गद्य रचनाओं में स्त्री-विमर्श पर जबरदस्त विचार रखती है ऐसा लगता है हर एक पंक्ति मस्तिष्क में द्वन्द्व उत्पन्न करता है। स्त्री का कोई अपना घर नहीं प्राप्त हो सका है जहाँ वह स्वच्छन्द जीवन यापन कर सके। ससुराल हो या मायका से पग पर भूमि भी नसीब नही है। जिस घर पर उसका न्यायोचित अधिकार था उसी में पग भर भूमि माँगने को विवश है। इस विषमता को खत्म करके ही स्त्री को परिवार का एक व्यवहारिक सदस्य बनाया जा सकता है। पौराणिक मान्यता प्राप्त देवी शक्ति के रूप मे नहीं क्योंकि जब तक वह संज्ञा-शून्य मौन रहेगी पूजी जायेंगी या फिर प्रताड़ित होती रहेंगी।

"स्मृती की रेखायें" का एक शीर्षक "बिबिया" जिसमें एक विधवा स्त्री की समाज में क्या स्थिति होती है इस पंक्ति में अभिव्यक्त है . "ऐसी परिस्थिति में जिस प्रकार उच्च वर्ग की स्त्री का गृहस्थी बसा लेना कलंक है उसी प्रकार नीच वर्ग की स्त्री का अकेला रहना सामाजिक अपराध है।"[4] इस प्रकार एक विधवा अगर वह उच्च वर्ण की है तो उसका ब्याह करना स्त्री का चरित्रहीन माना जाता है अगर सती हुई तो इतिहास में नाम लिया जायेगा। वही अगर स्त्री निम्न वर्ण की विधवा है तो उसका समाज में अकेले रहना दुष्वार हो जाता है। समाज में उसकी काफी बुरी स्थिति बन जाती है और बस जीवन-साथी कैसा भी हो किसी तरह उसके साथ बाँध दी जाती है आगे भयंकर दलदल में फँसती ही जाती है। महादेवी अपने समय के जीवंत प्रश्नों पर अपनी राय व्यक्त करती है।

यथार्थ के सन्दर्भ में महादेवी द्वारा उठाए गए कम से कम दो महत्वपूर्ण क्षेत्र है जिन पर आज भी बहस की जरूरत बनी हुई है। एक है .'स्त्री और दलित'ए दूसरा है-'धर्म के भीतर व्याप्त रूढ़िवादिता' इन दोनों ही घटकों की समाज में विसंगत स्थितिए आधुनिक समाज को पीछे धकेलती है। गतिवान को पंगु बनाकर रखना सबसे बड़ी क्रूरता है। एक जीवित व गतिशील प्राणी को कैद करके रखना कितनी बड़ी क्रूरता है। ऐसा करने वाला और कैद में रहकर आराम से पड़े रहनेवाला दोनों दोषी होते हैं क्योंकि अपने नैसर्गिक गतिशीलता को खत्म करना खुद को खत्म करना है। स्त्री की जीवन-शक्ति का ह्रास इसी कारण हुआ कि वह अपने आपको अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति के अनुरूप बनाने में असमर्थ रही है। जैसा की सदियों से जो रूढ़िया बनीबनायी हुई हैं उसी के अनुरूप आज की आधुनिक समय में जीनाए रहना मनुष्य की मनुष्यता खत्म करती है। परिवर्तन जीवन को गतिशील बनाता हैं और ये बात स्त्री को समझना चाहिए। अब धीरे-धीरे समझने लगी हैं।वास्तव में गृह की सीमा में उनसे इनता अधिक त्याग और बलिदान माँगा गया कि वे उसके प्रति विद्रोह कर उठीं। स्वेच्छा से दी हुई छोटी से छोटी वस्तु मनुष्य का दान कहलाती हैए परन्तु अनिच्छा से दिया हुआ अधिक से अधिक द्रव्य भी मनुष्य की अधीनता सूचक कर ही समझा जायेगा। स्त्री को जो कुछ बलात् देना पड़ता है वह उसके दान की महिमा न बढ़ा सकेगाए यह शिक्षिता स्त्री भली भाँति जान गई है "[5] महादेवी वर्मा को आधुनिक युग की स्त्री से जो जाग्रत एवं शिक्षित है उनसे बड़ी उम्मीद है किए वह सम्पूर्ण स्त्री के अधिकारों की सीमा क्या होध एवं उनकी समस्याओं का समाधान निकालने में अपने को सार्थक बनाये। अगर एक जाग्रत महिला कोई प्रयत्न न करेगी तो स्थिति जस की तस रहेगी। वह भारतीय समाज में स्त्री शिक्षा को देखकर बहुत चिन्तित होती हैं। "शिक्षा की दृष्टिसे स्त्रियों में दो प्रतिशत भी साक्षर नहीं है। प्रथम तो माता-पिता कन्या की शिक्षा के लिए कुछ व्यय ही नहीं करना चाहते दूसरे यदि करते भी है तो विवाह की हाट में उनका मूल्य बढ़ाने के लिए कुछ उनके विकास के लिए नहीं।''[7]

हमारे भारतीय समाज में स्त्रियों की शिक्षा का उद्देश्य विवाह में उनके मूल्य बढ़ाने के लिए होता है। पहले तो उनकी शिक्षा पर ज्यादा व्यय भी नहीं करना चाहते और अगर करते भी हैं तो विवाह रूपी उद्देष्य के लिए न की व्यक्तित्व व समाज विकास के लिए। ऐसे में स्त्री

को बड़े सावधाानी व समझदारी से अपने शिक्षा का उपयोग करना पड़ेगाए भले ही उनके माता-पिता द्वारा उन्हें शिक्षित करने का उद्देश्य विवाह योग्य बनाना रहा हो। विवाह मनुष्य जाति की असभ्यता की भी सबसे प्राचीन प्रथा है और सभ्यता की भीए परंतु उसे समाजिक के साथ .साथ नैतिक और धार्मिक बंधन बनाने के लिए भी अधिक परिष्कृत करना होगा।''[8]

महादेवी जी विवाह संस्था को साथ रहने की सहज इच्छा के रूप में मानती है न कि कोई शर्त। ऐसा नहीं की विवाह के पश्चात् स्त्री का स्वालम्बिनी होना विवाह संस्था खत्म हो जायेगी या खतरे में पड़ जायेगी इसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। ये एकदम गलत धारणा है कि स्त्री को दूसरे पर निर्भर रहकर ही विवाह संस्था को चलाया जा सकता है और आगे भी ऐसा ही चलता रहेगा अगर ऐसा ही है तो जिन देशों में स्त्रीयाँ एकदम स्वतंत्र व खुद पर निर्भर हैए उन देशों से विवाह संस्था खत्म ही हो गया होता परन्तु ऐसा नहीं हुआ। कहने का यह तात्पर्य है कि विवाह संस्था में प्रवेश करने पर उसमें जो कुरीतियाँ व स्त्री दमन मूलक जो परिस्थितियाँ हैए उसमें सुधार होनी चाहिए और ऐसा सम्भव उन्हीं लोगों द्वारा है जो स्त्री हो या पुरुष अपने को शिक्षित व जाग्रत करें।

भारतीय समाज में श्रमजीवियों की स्त्रियां तथा किसानों की पत्नियाँ घर संभालती हैं और खेतों में काम कर जीविका के उपार्जन में पुरुष की सहायता भी करती हैं इसके बावजूद उन्हें केवल पुरुष मनोरंजिनी विद्या के अतिरिक्त और कुछ न सिखाना उनके लिए भी घातक है और समाज के लिए भी क्योंकि वे सच्ची सामाजिक प्राणी व नागरिक कभी बन ही नहीं पाती हैं। जो चीज जरूरी है वह है-'स्त्री का स्वतंत्र नागरिक चेतना से सम्पन्न होना।'

प्रायः अधिकांश विचारक स्त्री स्वतंत्रता का आधार उसकी आर्थिक स्वतंत्रता से जोड़कर देखता है कि स्त्री अगर आर्थिक रूप से स्वतंत्र रहेगी तो वह अपनी सभी किस्म की स्वतंत्रता की रक्षा कर लेगीए घर में जो कार्य स्त्री करती है उसका कोई मूल्य नहीं समझा जाता है हर सदस्य यहाँ तक की खुद स्त्री भी यह समझ पाती की वह किसी पर आश्रित नहीं हैए क्योंकि एक दिन भी अगर वह काम न करें तो क्या हंगामा मचता है। इतना करने के पश्चात् भी सवाल तब भी जहाँ का तहाँ है। महादेवी जी ने यह सवाल खड़ा किया कि यदि आर्थिक रूप से स्त्री स्वतंत्र नहीं है तो क्या उसे स्वतंत्र होने का हक नहीं होना चाहिएध् वह स्त्री की स्वतंत्रता के प्रश्न को उसकी आर्थिक स्वतंत्रता से एक हद तक ही जोड़ती है।

महादेवी उन स्त्री विमर्शकारों में से नहीं है जो स्त्री के कष्टों का जिम्मेदार केवल पुरुषों को बतायें। स्त्री किस प्रकार अपने को चूर-चूर कर पत्थर की देव- प्रतिमा बन सकती हैए यह देखना हो तो हिन्दू गृहस्थ की दुध मुंही बालिका से शापमय युवती में परिवर्तित होती हुई विधवा को देखना चाहिए जो किसी अज्ञात व्यक्ति के लिए अपने हृदय कीए हृदय के समान ही प्रिय इच्छाएँ कुचल-कुचल कर निर्मूल कर देती हैए सतीत्व और संयम के नाम पर अपने शरीर और मन को अमानुषिक यंत्रणाओं के सहने का अभ्यस्त बना लेती है और इस पर भी दूसरों के अमंगल के भय से आंखों में दो बूंद जल भी इच्छानुसार नहीं आने दे सकती।''[9] रूढ़ियों और परम्पराओं ने किस प्रकार स्त्री को बन्धन में जकड़े हुये हैए जैसे ही वह वैवाहिक जीवन में प्रवेश करती है न जाने कितने रीतियों को अपनाना पड़ता है जैसे लगता हि नहीं की शादी से पहले की जींदगी फिर से जीना समाजिक नियमों के अनुकुल होगा। संस्कारों ने उसे पक्षाघात के रोगी के समान जड़ कर दिया है। उस पर भी अगर स्त्री कम उम्र में विधवा हो जाय तो समाज के लिए अपशकुन के रूप में देखी जाने लगती है और स्त्री भी अपमान की घूँट पीती रहती है। किसी के सामने प्रकट भी नहीं कर सकती। इसलिए महादेवी यह आवाह्न करती है कि मनुष्य को मनुष्य की स्थिति में रहने दिया जाय क्योंकि-''मनुष्यता से ऊपर की स्थिति को अपना लक्ष्य बनाने से प्रायः मनुष्य देवता की पाषाण प्रतिमा बनकर रह जाता है और इसके विपरीत मनुष्य से नीचे उतरना पशु की श्रेणी में आ जाना है। एक स्थिति मनुष्य से ऊपर होने पर भी निष्क्रिय हैए दूसरी इससे नीची होने के कारण मनुष्यता का कलंक है। अतः दोनों ही स्थितियों में मनुष्य का पूर्ण विकास संभव नहीं।''[10] अतः जब तक स्त्री .पुरुष दोनों मनुष्यत्व युक्त मनुष्य नहीं बन सकते तब तक जीवन की कला विकास नहीं पा सकेगी। महादेवी जी स्त्रियों की इस मूर्तिमान होने से दुखित हैं और दास्यत्व होने से भी उनको रोकना चाहती हैं। अतः उन स्त्रियों से काफी उम्मीद और आशा रखती हैं जो पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ है उन पर यह भार है कि वे अपनी अशिक्षित मजदूरए कृषकए गृहिणी बहनों में आत्मसम्मान और अधिकार चेतना पैदा करें। केवल फैशन के लिए कुछ सभा-गोष्ठियांए विभिन्न किस्म के इमदादों पर चलने वाले निजी संगठन खोलकर भद्र समाज की महिलाएं अपना और अपने जैसे दो-चार लोगों का हित साधन कर सकती हैं लेकिन इससे स्त्री समाज की उन्नति नहीं हो सकती।

निष्कर्षः- स्त्री के लिए सबसे खराब होगा कि वह तमाम शिक्षा और आधुनिक परिवेश का साकारात्मक उपयोग न कर पाए और वैसी ही बर्बर और जाहिल बनी रहे हैं। जैसे उसके व्यवहारकर्ता उसके साथ व्यवहार करते आ रहे हैंए क्योंकि घृणा और बदले की भावना से किसी कौम को मुक्ति नहीं मिलती। महादेवी के गद्य के 'सामाजिक संदर्भ' मूल्यवान हैं। ऐसे तमाम अनछुए-अनजाने पहलुओं को उनके विचारपरक रचनाओं में हम देखते हैंए जो स्त्री-विमर्श के लिए आधारपरक रूप में हैं। वस्तुतः इनके रचनाओं के पात्र व्यक्ति के नहींए समूह के प्रतीक हैं। स्त्री-पात्रों की सामाजिक विवशताएँ ऐसी स्थितियों से साक्षात्कार कराती हैं कि कलेजा मुँह को आ जाता है।मर्दवादी-समाज का यह अत्याचार महादेवी के गद्य की 'अभिव्यक्ति' में एक ऐसा 'पाठ' प्रस्तुत करता है जिसे समाजशास्त्रीयए अर्थशास्त्रीय और मनोविश्लेषणात्मक अनुशासनों के अंतर्गत पढ़ा जाना चाहिए।''[11] स्त्री-विमर्श पर बात करते हुए महादेवी वर्मा को केन्द्र में रखकर आगे सोचना होगा। उनकी रचना-कर्म के 'पाठ' और उस पाठ में निहित नारी उपेक्षा और तमाम तरह के दमन-शोषण अलगाव के संदर्भों को भुलाकर बात नहीं की जा सकती है।

****

सन्दर्भ ग्रन्थ

1.श्रृंखला की कड़ियाँ महादेवी वर्मा (अपनी बात)
2.श्रृंखला की कड़ियाँ महादेवी वर्मा पृ0 23
3.श्रृंखला की कड़ियाँ महादेवी वर्मा पृ0 29
4.अतीत के चलचित्र: महादेवी वर्मा पृ0 115
5.स्मृति की रेखाएँ महादेवी वर्मा पृ0 107
6.श्रृंखला की कड़ियाँ पृ0 54
7.श्रृंखला की कड़ियाँ पृ0 85
8.वही पृ0 83
9.वही पृ0 147
10.वहीए पृ0 151
11.नवजागरण और महादेवी वर्मा का रचना-कर्म स्त्री-विमर्श के स्वरए कृष्णदत्त पालीवालए पृ0 330